निर्णय

(श्री जयदयाल डालमियां)

महात्माओं की प्रत्यक्ष कृपाओं को मनुष्य अपनी परिमित बुद्धि की कसौटी पर कस कर उसके अच्छे बुरे का निर्णय कर उस पर टीका टिप्पणी किया करता है । साधारण सांसारिक वस्तु के निर्णय करने के लिए भी उसके सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यकता होती है । पाठशालाओं में विद्यार्थियों की किसी विषय की परीक्षा लेने वाले को उस विषय का उनसे कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है तब कहीं वह उस विषय की परीक्षा लेने के योग्य होता है । फिर भला, संसार से विरक्त महात्माओं के आचरणों की परीक्षा लेने के लिए अपनी सांसारिक राजसी बुद्धि का उपयोग कर मनुष्य किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकता है ? महात्माओं की परीक्षा वही व्यक्ति ले सकता है जो उनसे ऊंची स्थिति को पहुंच गया है । समान स्थिति वाला भी परीक्षक होने योग्य नहीं हो सकता फिर निम्न स्थिति वाले की तो बात ही क्या है ? वास्तव में महात्माओं के अच्छे बुरे का निर्णय करना तो दूर रहा, हमारी परिमित बुद्धि संसारी बातों का भी यथार्थ निर्णय करने में असमर्थ है । यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि सत्य सदा एकसा रहता है, उसे त्रिकाल में भी कभी कोई नहीं बदल सकता । मनुष्य अपने विषय में आलोचना करने वाले की बुद्धि को भ्रम में माना करता है परन्तु ऐसा देखने में आता है कि अपने जिस निर्णय को आज हम अन्तिम निर्णय मान कर उसका पक्ष स्थिर करने के लिये विरोधी मन वालों को लड़ झगड़ कर उसकी जड़ उखाड़ फेंकना चाहते हैं उसी निर्णय को कल स्वयं बदल देते हैं । इस प्रकार के अनेक उदाहरण बड़े बड़े विद्वानों में देखने में आवेंगे । ऐसा अस्थिर निर्णय करने वाली बुद्धि का अभिमान कर दूसरों को तुच्छ समझना बड़ी भूल है । जब संसारी विषय के लिए हमारा यह हाल है उस अवस्था में संसार के माय जाल से परे पहुंचे हुए महात्माओं के विषय में अपनी अपनी अल्पज्ञ बुद्धि के आधार पर तत्काल निर्णय दे देना कितना अपराध है ? पाठकों के सम्मुख इस विषय की एक सच्ची घटना का बयान किया जाता है जिससे वे स्वयं समझ जायंगे कि अपनी तुच्छ बुद्धि का निर्णय मान कर अभिमान करने वाले को यदि वह वास्तविक रहस्य जान जांय तो कितना लज्जित होना पड़े ।

किसी व्यक्ति ने एक गंगातीर निवासी महात्मा के निकट रह कर कुछ दिनों के लिए उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त किया था । सब पर सम दृष्टि महात्माओं का स्वभाव होता है । यही कारण है कि महात्माओं के पास जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि इनकी मुझ पर सबसे अधिक कृपा दृष्टि है । कुछ समय के सत्संग के उपरान्त वह व्यक्ति अपने स्थान पर जाकर व्यवहार में लग गया । बीच बीच में महात्मा जी का स्मरण कर कभी पत्र द्वारा अपनी शंका समाधान कर लिया करता । घर में सब प्रकार संपन्न था अतः एक समय उसने भक्ति सहित कुछ सुन्दर पक्के फल जो कुछ दिनों ठहर सकें महात्मा जी की सेवा में वहां रहने वाले किसी परिचित व्यक्ति की मारफत रेल पारसल द्वारा भेजे ।

वह पुरुष बड़े प्रेम से उन फलों को लेकर संत के चरणों में पहुंचा और सारा हाल निवेदन कर सुनाया । इस पर उन विरक्त सन्यासी ने स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ उन फलों को ज्यों का त्यों लौटा दिया । यह समाचार जब भेजने वाले व्यक्ति के पहुंचा तब उसने समझा कि मुझ पर महात्मा जी नाराज हो गये और उसे बड़ा क्षोभ हुवा कि ऐसा मुझ से कौनसा अपराध हुवा जो मेरी सेवा स्वीकार न हुई । उस बिचारे ने तो अपने ही अपराध का अनुमान संत में क्रोध की मिथ्या कल्पना की लेकिन ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो इतने पर ही यह निर्णय कर बैठें कि कैसा महात्मा है, मैंने तो इतनी दूर से इतना खरच कर प्रेम-पूर्वक भेंट भेजी और उसने स्वीकार ही नहीं की । अस्तु इस पर उस भेजने वाले व्यक्ति ने अपना अपराध क्षमा कराने ने आशय का एक जबाबी पत्र भेजा । जबाबी पत्र भेजने का कारण यह था कि वे अपने पास लिफाफे पोस्टकार्डों का संग्रह नहीं रखते थे एवं न किसी से याचना ही करते । इसके उत्तर में संत का इस आशय का स्वाभाविक उत्तर आया कि कौन किसका अपराध करे और कौन क्षमा करे । यद्यपि बात यथार्थ है लेकिन इससे उस भावुक का हृदय और भी कांपने लगा और उसने पुनः दीनता पूर्वक क्षमा याचना की इस के उत्तर में संत का निम्न लिखित पत्र आया :—

श्रीयुत भावुक जी !
नारायण !

आपका पत्र ता० २१-६-३२ का मिला । पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ ।

सेवा तो की किंतु विचार सहित नहीं की, इस लिये स्वीकार न हुई और न हो सक्ती है । जैसा देव वैसा सेव, यह वृद्ध पुरुषों का वचन है । मेवा मिठाई की सेवा तो सेठ साहूकारों की की जाती है, क्योंकि वे उस सेवा के योग्य हैं, भिक्षुकों की सेवा तो दो रोटी से होती है । यह ही उनकी औकात है, मिठाई मेवा की उनकी औकात नहीं है, फिर भी भिक्षा के समय हो जाय, तो भावुक की इच्छानुसार हो भी जाय, इतनी दूर से ऐसी सेवा होनी योग्य नहीं है, क्योंकि उसका फल कुछ नहीं है अथवा कुछ है, तो विपरीत है । अपना खर्च किया औरों को कष्ट दिया, हमारे लिये विक्षेप किया, तीन दिन तक रखवाली करनी पड़ती, फिर किस को न दें, दें भी तो कितने दें ऐसी झंझट में पड़ना ठीक न समझ कर लौटा दिये । स्वीकार कर लेते तो आगे फिर ऐसा ही होता, ऐसी सेवा के हम योग्य नहीं हैं और आप को करनी भी नहीं चाहिये, अपना खर्च करना, दूसरे को विक्षेप में डालना सेवा नहीं है । अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, आप समझदार हैं, ऐसी सेवा का विचार भी न करें, अप्रसन्नता का कोई कारण नहीं है आप का कल्याण हो । इति शम् !